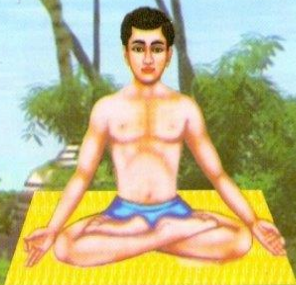


जन्म शताब्दी पुस्तकमाला - १८

साधना में वातावरण और श्रद्धा की महत्ता (प्रवचन)



- श्रीराम शर्मा आचार्य

साधना में वातावरण और श्रद्धा की महत्ता

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ बोलें—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो
देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।

मित्रो, कुछ काम ऐसे होते हैं जिसे बाहर के लोग कर सकते हैं, किंतु कुछ काम ऐसे हैं जो स्वयं करने चाहिए। दोनों मिलकर एक पूर्णता बनाते हैं। अकेले बाहर के आधारों से आज तक किसी का काम नहीं चला और न ही अकेले के प्रयास से ही कोई आदमी आज तक संपन्न बना है। जब दोनों का सहयोग होता है अर्थात् बाहर का अनुदान और अपना पुरुषार्थ दोनों को मिलाकर के फिर एक बात बन जाती है। खाना पकाकर किसी ने दिया, भोजन बहुत सुंदर और पौष्टिक भी है, लेकिन उसे हजम तो आपको ही करना पड़ेगा। मुँह से तो उसे आप ही चबाएँगे। ऐसा नहीं हो सकता कि बाहर वाला ही

चबाकर उसे आपके मुँह में डाल जाए और फिर आपके पेट में बैठकर उसे हजम करके खून में शामिल कर दे। यह काम मुश्किल ही नहीं असंभव भी है। यह काम तो हर हालत में आपको ही करना चाहिए। बाहर का आदमी अधिक से अधिक यह कर सकता है कि आपको बहुमूल्य भोजन बिना कीमत के भी पकाकर दे दे और आपको सम्मानपूर्वक खिलाए। इतने से ही उसका काम पूरा हो जाता है, अब आपका काम है कि उसको आप सँभालें। आपकी जब शादी हुई थी, तब आपको एक अच्छी-खासी धर्मपत्नी मिली थी न किसने दी थी उसे? उस लड़की के माता-पिता ने बड़ी मेहनत से अच्छी सुयोग्य लड़की बना करके पाल-पोषकर सुशिक्षित बनाकर उसे आपके हवाले किया था। उनका काम पूरा हो गया, लेकिन आपका काम बाकी रह गया है कि घर में धर्मपत्नी के आने के बाद उसकी देखभाल करें, उसकी जिम्मेदारियों को वहन करें। अगर आप उसकी जिम्मेदारियाँ वहन नहीं कर सकते, उसके

रहन-सहन एवं खान-पान का प्रबंध नहीं कर सकते और आप उसको पूरी इज्जत देकर सहयोग प्राप्त नहीं कर सकते तो उनके माता-पिता का दिया हुआ अनुदान आपके लिए निरर्थक चला जाएगा और वह जो धर्मपत्नी आपको मिली है, आपके कोई खास काम न आ सकेगी। आपके लिए भार बनकर रहेगी।

मित्रो, हमने यहाँ जो कुछ भी बनाया है— आपके लिए बहुत कुछ बनाकर रखा है, वह बहुत सुंदर और शानदार है, लेकिन उसे महसूस तो आपको ही करना है, हजम तो आपको ही करना है। हमारी करने की जो सीमा थी वह हमने पूरे तरीके से कर दिया। क्या कर दिया? आपके लिए एक वातावरण बनाकर के हमने रख दिया यहाँ शांतिकुंज में। यहाँ क्यों बुलाया है आपको? वातावरण का लाभ उठाने के लिए बुलाया है। यहाँ जो भी क्रियाकृत्य आपसे कराए जा रहे हैं, वह तो आप अपने घर पर भी कर सकते हैं। कौन सी ऐसी चीज है जो आप घर पर नहीं कर सकते थे? खान-पान संबंधी जो नियम—

बंधन आपको बताए गए हैं, क्या आप उसे घर पर नहीं कर सकते थे ? क्यों नहीं कर सकते थे । कौन सी ऐसी वजह है जो आप नहीं कर सकते हैं ? यहाँ जो जप और अनुष्ठान कराया जाता है, क्या आप घर पर नहीं कर सकते थे ? जरूर कर सकते थे । जो नियम और मर्यादा पालन करने के लिए यहाँ कहा गया है, वह हमारी पुस्तकें पढ़कर आप घर पर भी कर सकते थे, लेकिन यहाँ क्यों करना पड़ा ? यहाँ का वातावरण ही ऐसा है वातावरण को बनाने के लिए हमने बहुत मेहनत की है । आप वातावरण की कीमत समझिए । वातावरण की कीमत यदि आप नहीं समझ पाते बहुत बड़ी भूल करते हैं ।

एक बार गुरु वसिष्ठ ने रामचंद्रजी से कहा—
हे राम अब बुढ़ापे का समय आ गया है अतः अब भगवान की भक्ति और जीवन को ऊँचा उठाने के लिए कुछ प्रयास करना चाहिए । रामचंद्र जी ने कहा कि तो फिर बताएँ इसके लिए क्या किया जाए ? उन्होंने कहा—यहाँ कैसे बताऊँ, इसके लिए तो उपयुक्त

वातावरण में चलना पड़ेगा। यहाँ जैसा वातावरण कहाँ है ? यहाँ अयोध्या जिस वातावरण में आप रहते हैं वहाँ ऐसी कोई गुंजाइश नहीं है कि बताया जा सके। क्योंकि यहाँ आपके कुटुंबी रहते हैं, संबंधी रहते हैं राजपाट के लोग आते रहते हैं कितने ही आप से विचार-विमर्श करते रहते हैं। कितनों से आपको खीझ पैदा होती है। कितनों से आपको सहयोग-समर्थन मिलता रहता है। कितनों से आपको लगाव है तो कितनों से आपको नाखुशी है। यहाँ के वातावरण में आध्यात्मिकता को पनप पाने की कोई संभावना नहीं है। अतः आपको अयोध्या छोड़नी चाहिए। अयोध्या के साथ जुड़े हुए जो बंधन आपके साथ हैं, वह जब तक आपको जकड़े हुए रहेंगे, मन भगवान की तरफ चलेगा ही नहीं। भक्ति आप कर सकेंगे ही नहीं और न अध्यात्म की तरफ का रास्ता ही खुल सकेगा। इसलिए आपको यहाँ से चलना पड़ेगा। रामचंद्रजी ने कहा—तो फिर कहाँ चलना पड़ेगा ? गुरु वसिष्ठ ने कहा—हमारे नजदीक ही, जहाँ हम रहते हैं।

गुरु वसिष्ठ की गुफा हिमालय पर थी। वहीं उन्होंने चारों भाइयों को बुला लिया। रामचंद्र जी देव प्रयाग में रहने लगे, लक्ष्मण जी वहाँ रहने लगे, जहाँ आज लक्ष्मण झूला है। भरत जी ऋषिकेश में जाकर जम गए और शत्रुघ्न ने मुनि की रेती पर अपना स्थान बना लिया। चारों भाई अलग-अलग रहकर गुरु वसिष्ठ के मार्गदर्शन में शिक्षण प्राप्त करने लगे। तो अयोध्या में क्या कमी थी ? अयोध्या में वह वातावरण नहीं था जो हिमालय का वातावरण है—संस्कारी वातावरण, जिसमें कि हजारों वर्षों से लोगों ने तप किए हैं, साधनाएँ की हैं। वह वातावरण अयोध्या में कहाँ था ? वहाँ तो राजपाट होता था, लड़ाई-झगड़े होते थे, मुकदमे होते थे, दूसरी बातें होती थीं, पर वहाँ तप का वातावरण नहीं था। हजारों वर्षों से विश्वामित्र सहित अन्यान्य ऋषि-मुनियों ने जो तप किया है उससे हिमालय का वातावरण उच्चस्तरीय बन गया। अतः श्री रामचंद्र जी को भी गुरु वसिष्ठ की आज्ञा मानकर देव प्रयाग में रहना

पड़ा। अयोध्या में रहकर गुरु वसिष्ठ श्री रामचंद्रजी को योग वसिष्ठ नहीं पढ़ा सकते थे। वहाँ वे केवल सलाह दे सकते थे कि राजपाट इस तरह से चलाइए, लेकिन आध्यात्मिक विषयों के लिए उन्होंने भी देव प्रयाग को मुनासिब समझा और हिमालय के उसी वातावरण में साधना कराई। चारों भाइयों समेत भगवान वहाँ रहे।

आध्यात्मिक जीवन में उच्चस्तरीय वातावरण की अपेक्षा होती है। केवल आध्यात्मिक जीवन में ही नहीं, सांसारिक जीवन में भी वातावरण की जरूरत होती है। आप सांसारिक जीवन की बात जानते हैं न ? सांसारिक जीवन में भी अगर वातावरण न मिले तो बहुत मुश्किलें पैदा हो जाती हैं। खुशबूदार चंदन मैसूर और केरल में पाया जाता है। इसी चंदन के पेड़ अगर आप वहाँ से ले आएँ और दूसरी जगह लगा दें तो चंदन तो पैदा हो जाएगा, पर उसमें से वह सुगंध नहीं आएगी जो पहले वाले पेड़ में थी। ऐसी क्या बात है जो सुगंध को भी

बदल देती है ? वह है वातावरण जो जलवायु पर टिका हुआ है। नागपुर के संतरे और बंबई (मुंबई) के केले के बारे में आप जानते हैं न। क्यों साहब वही संतरे और केले आप यहाँ ले आइए और लगाकर देखिए कि वैसे मीठे वे नागपुर में और बंबई (मुंबई) में होते हैं, यहाँ भी हैं क्या ? नहीं, वैसे मीठे वे आपके यहाँ नहीं हो सकते। कारण एक ही है कि वहाँ के वातावरण की अपनी विशेषता है। बंगाल निवासियों के स्वास्थ्य आपने देखे होंगे, वे दुबले-पतले और कद में छोटे होते हैं और सीमा प्रांत के लोग लंबे और मोटे होते हैं। क्या खाते हैं वे लोग ? वही दाल-रोटी खाते हैं। फिर क्या बात है कि वे इतने मोटे हो जाते हैं। वे इतने मजबूत कैसे हो जाते हैं और बंगाल वाले कैसे कमजोर रह जाते हैं। यह सब वातावरण का कमाल है।

इस संदर्भ में एक और भी पुरानी बात याद है। श्रवण कुमार अपने माता-पिता को कंधे पर बिठाकर उन्हें तीर्थयात्रा कराने के लिए ले जा रहे थे।

यू० पी० मेरठ के पास एक जगह है, जहाँ आकर वह रुक गए और अपने माता-पिता से कहा—क्यों जी ! आपकी आँखें ही तो खराब हैं, टाँगें तो खराब नहीं हैं। हम आपकी लकड़ी पकड़ लेंगे और आप लोग हमारे पीछे-पीछे चलिए न क्यों हमारे कंधे पर सवार होते हैं। श्रवण के माता-पिता अचंभे में रह गए। कंधे पर बैठकर चलने से उनका तो मतलब यह था कि हमारा लड़का सारे संसार भर में अजर और अमर होकर रहे, सारी दुनिया उसका नाम लिया करे, अपने बच्चों को प्यार देने के लिए उसका जीवन एक गाथा बन जाए, उदाहरण बन जाए। उनका मतलब सवारी गाँठने से थोड़े ही था। उन्होंने कहा—अच्छा बेटे जैसे तुम कहोगे हम वैसा ही करेंगे पर काम करो आज रात को हम ठहरेंगे नहीं यहाँ। यहाँ से हमको बहुत दूर चलना चाहिए और इस क्षेत्र को पार कर लेना चाहिए। श्रवण कुमार ने अपने माता-पिता का कहना माना और उस इलाके से बहुत दूर चला गया। जैसे ही वह इलाका खत्म हुआ, वैसे ही

श्रवण कुमार को बहुत आश्चर्य हुआ अपने ऊपर और वह फूट-फूट कर रोने लगा। उसने कहा पिताजी मैंने कैसे कह दिया था कि आप अपने पैरों पर चलिए। मुझे यह कितना बड़ा सौभाग्य मिला था जिसे मैं छोड़ना चाहता था। पिता ने कहा—बेटे डरने की कोई बात नहीं है। वस्तुतः जहाँ तुम्हारे मन में वह विचार आया था वह स्थान ऐसा था, जहाँ एक 'मय' नाम का दानव था। वहाँ उसने अपने माता-पिता को मार डाला था। बस उसी स्थान से होकर हम चल रहे थे और उसके संस्कार भूमि में पड़े हुए थे। भूमि के संस्कारों की वजह से तुम्हारे मन में विचार आए थे। अब हम उस क्षेत्र से निकल आए हैं अतः सब कुछ सामान्य हो गया है।

अब आप समझ गए होंगे कि वातावरण का कितना भारी असर होता है आपको हमने इसलिए यहाँ के वातावरण में बुलाया है। हिमालय के नजदीक बुलाया है। हिमालय यहीं से शुरू होता है। यहीं शिव और सप्तर्षियों का स्थान था। स्वर्ग कहाँ था ?

स्वर्ग हिमालय के उस इलाके में था जिसको 'नंदनवन' कहते हैं। गोमुख से आगे। स्वर्ग जमीन पर था। सुमेरु पर्वत भी वहीं है। देवता भी इसी इलाके में रहते थे हिमालय वाले क्षेत्र में। सारे के सारे महत्त्वपूर्ण ऋषि व सप्तर्षियों से लेकर सनक-सनंदन तक एवं नारद से लेकर आदि गुरु शंकराचार्य तक जितने भी महत्त्वपूर्ण व्यक्ति हुए हैं, उनकी साधना इसी स्थान में हुई है। इसलिए हिमालय का अपना वातावरण है। गंगा की महत्ता तो आप जानते हैं न ? गंगा की कितनी बड़ी महत्ता है। गंगा को सारा संसार जाने क्या-क्या मानता है। भौतिक दृष्टि से भी और आध्यात्मिक दृष्टि से भी यहाँ गंगा जी प्रवाहित होती हैं। जिस स्थान पर हमने यह शांतिकुंज बनाया है। हमारे गुरुदेव ने इस स्थान का महत्त्व बताया था कि यहाँ सात ऋषियों का तप हुआ था। यहाँ सात ऋषियों की सात गंगाएँ थी। दो गंगाएँ गायब हो गई हैं, परंतु पाँच गंगाएँ अभी भी दिखाई देती हैं। दो गंगाएँ जो गायब हो गई हैं, वह कहाँ गई ? वह इसी

स्थान पर थीं, जहाँ आज शांतिकुंज बना हुआ है। एक धारा यहाँ बाहर बहती थी जिसे बाँध बनाकर रोक दिया गया था तब भी गंगा का पानी जमीन में से उछलता रहता है। शांतिकुंज के पीछे एक नाला बहता है, वह जमीन में से उछलता रहता है। आप कहीं भी जरा सा गड्ढा खोदिए, गंगा जल तैयार है। यह गंगाजी की विशेषता है। शांतिकुंज हिमालय के द्वार पर बना है। यहाँ ऐसा प्राणवान सान्निध्य है, जहाँ शेर और गाय प्राचीनकाल की भाँति एक साथ पानी पीते हैं। ऐसा ही वातावरण है यहाँ शांतिकुंज में। यहाँ ऐसे लोगों का सान्निध्य आपको मिला है जिसके लिए अगर आप सारे हिंदुस्तान में घूमें और यह तलाश करें कि ऐसे प्राणवान सान्निध्य कहीं मिलेंगे क्या ? ऐसे प्राणवान सान्निध्य प्राचीनकाल में तो शायद हुए हों, पर आज आपको ऐसा आध्यात्मिकता का सही वातावरण अन्यत्र मिलेगा नहीं जैसे कि शांतिकुंज में हमने बनाकर रखा है और आपको यहाँ साधना करने के लिए बुलाया है।

तो गुरुजी क्या इतने भर से बात पूरी हो जाएगी ? नहीं बेटे, इतना ही पर्याप्त नहीं। आपको इसके साथ में अपनी श्रद्धा सँजोकर के रखनी पड़ेगी। श्रद्धा को आप सँजोकर अगर नहीं रखेंगे तब फिर यह जमीन भी वैसी ही है जैसे कि मछली पकड़ने वाले गंगा जी में घूमते रहते हैं, पर श्रद्धा उनमें नहीं है तो उससे कोई फायदा नहीं। अगर श्रद्धा और भक्ति का अभाव है तो अच्छे वातावरण से भी कोई फायदा नहीं। अगर श्रद्धा के भाव हैं तो यही गंगा तरण-तारिणी बन जाती है और अपने बच्चों का उद्धार कर देती है और श्रद्धा के अभाव में यही केवल नहर रह-जाती है, सामान्य सा पानी रह जाता है। आपको अपनी श्रद्धा समुन्नत करनी पड़ेगी। अगर आप यहाँ निवास करते हैं तो कृपा करके अपनी श्रद्धा को जीवंत कीजिए और यह अनुभव करना शुरू कीजिए कि आप किसी ऐसे स्थान पर निवास करते हैं, जहाँ का वातावरण आपकी साधना को सफल बनाने में समर्थ है। यह सप्तऋषियों की

तपस्थली गायत्री के ऋषि विश्वामित्र, जिन्होंने गायत्री महामंत्र का साक्षात्कार किया था, ठीक इसी स्थान पर तप करते थे। सात ऋषि हैं, उनमें से एक विश्वामित्र भी हैं। विश्वामित्र कहाँ रहते थे? उनकी कुटिया कहाँ थी? यहीं थी, जहाँ आज शांतिकुंज है। यह विश्वामित्र का स्थान है।

वातावरण का कितना असर पड़ता है, देखा है न आपने। टिड्डा, बरसात के दिनों में हरे रंग का होता है और गरमी के दिनों में पीले रंग का हो जाता है। क्यों पीला हो जाता है? इसलिए हो जाता है कि चारों ओर सूखी हुई घास, फैला हुआ रेत दिखाई पड़ता है। उसको देखते-देखते वह पीले रंग का हो जाता है, जबकि बरसात में चारों ओर हरा रंग छाया रहता है। अतः वह हरा हो जाता है। भट्ठी के नजदीक बैठे हैं न आप। भट्ठी गरम होती है तो उसके नजदीक बैठने वाले भी गरम हो जाते हैं। बरफ की छतरी में आप कभी घुसें तो उसमें ठंडक पड़ती रहती है और जो भी घुसता है वह भी ठंडा

हो जाता है। आपको भी यही अनुभव होगा यहाँ। यह आपको तो अनुभव करना ही है, लेकिन एक बात और रह जाती है जिसके बिना यदि आप चाहें कि यहाँ के वातावरण का पूरा लाभ मिल जाए तो वह मिल नहीं सकेगा। इसके लिए श्रद्धा बहुत जरूरी है। श्रद्धा अगर आपके अंदर न हो और आप केवल इसकी इमारत देखते हों, आश्रम देखते हों, कोई क्वार्टर देखते हों, कोई होटल या धर्मशाला देखते हों तो फिर आपके लिए ठीक वही है जो आप देखते हैं। आपकी श्रद्धा अगर जमी तो वह तीर्थ है गायत्री का। हमने इसे तीर्थ बनाया है। इसमें तीर्थों की जो भी विशेषताएँ होती हैं, वह सब विशेषताएँ पैदा की हैं। हमने इसमें कोई कमी नहीं छोड़ी है कि जो एक शानदार, श्रेष्ठ, समर्थ तीर्थ बनाने के लिए किसी स्थान के लिए जो प्रयत्न किए जाने चाहिए, वह सारे प्रयत्न किए गए हैं।

रामचंद्र जी ने दस अश्वमेध यज्ञ किए थे, इसलिए दशाश्वमेध घाट तीर्थ हो गया। दुनिया में

और भी बड़ी-बड़ी बातें होंगी, बड़े-बड़े स्थान होंगे, पर सब तीर्थ थोड़े ही हो जाएँगे। प्रकृति के सभी स्थान ऐसे ही थे लेकिन, जब कोई महान घटना घटित हो गई और कोई महान कार्य संपन्न हो गए तो वही स्थान तीर्थ बन गए। तीर्थ के लिए भूमि को संस्कारवान बनाना पड़ता है। प्राचीनकाल में ऋषियों ने गुरुकुल बनाए थे, आश्रम एवं आरण्यक बनाए थे, जहाँ साधना के बड़े-बड़े अनुष्ठान संपन्न होते थे। हम भी यही कर रहे हैं। यहाँ चौबीस-चौबीस लक्ष्य के कितने अनुष्ठान हो चुके हैं, आप जानते हैं न। हर साल यहाँ नवरात्र में चौबीस करोड़ का पुरश्चरण हो जाता है। हर दिन वहाँ नौ कुंडीय यज्ञ में हजारों आहुतियाँ दी जाती हैं। यहाँ अखंड दीपक जलता रहता है। यहाँ हमारी और माताजी की नियमित रूप से कठोर तपश्चर्या अभी भी चलती रहती है। इससे वातावरण बनता है तो हमारे गुरुदेव परोक्ष रूप से आते ही रहते हैं। आपके अंदर श्रद्धा हो तो यहाँ गायत्री माता का प्रकाश और आलोक

आप चाहे जिधर अनुभव कर सकते हैं। हमारे गुरुदेव की और हमारी प्राणचेतना यहाँ के कण-कण में छायी रहती है। हमने आपसे कहा है कि यह अनुभव कीजिए कि आप यहाँ माताजी के गर्भ में निवास करते हैं। मुरगी अपने अंडे को छाती से लगाकर जिस तरह बैठी रहती है और अंडे पकते रहते हैं, हम लोग भी उसी तरह से आपको अपनी छाती से लगाए बैठे रहते हैं और आपको पकाते रहते हैं। इतना होते हुए भी इस बात के लिए विशेष रूप से निवेदन किया जा रहा है कि आपकी स्वयं की श्रद्धा जीवंत रहनी चाहिए। अगर आपने अपनी श्रद्धा का परित्याग कर दिया तो इस वातावरण में आपको कतई कोई लाभ नहीं मिलेगा। जैसे दूसरे लोग भी यहाँ आते हैं, कोई चोर-उचक्के-उठाईगीर भी आते होंगे, कोई मेहनत-मजदूरी करने वाले भी आते होंगे। स्कूटर वाले, मोटर ड्राइवर भी आते हैं, बीड़ी पीते रहते हैं और खाली हाथ चले जाते हैं। कारण उनके लिए शास्त्र का, श्रद्धा का कोई महत्त्व नहीं। श्रद्धा के

अभाव में बाहरी चीजें कोई ज्यादा लाभ नहीं दे सकतीं।

आपको आज मैं भावश्रद्धा के ऊपर बहुत जोर देना चाहता हूँ। अगर आप यहाँ से लाभ उठाना चाहते हों तो आप श्रद्धा मत छोड़ना, श्रद्धा को जाग्रत-जीवंत कर लिया तो आप यहाँ के कण-कण में से अमृत बरसता हुआ और आलोक उछलता हुआ, उभरता हुआ देखेंगे अगर श्रद्धा है तो, नहीं है तो फिर सब कुछ मिट्टी है और दूसरी इमारतें जैसी होती हैं, वैसी ही यह भी दिखेगी। मीरा को एक पत्थर का टुकड़ा दे दिया गया था। उस पत्थर के टुकड़े को लेकर के मीरा ने यह मान लिया था कि ये हमारे पति हैं और ये भगवान हैं। उनकी श्रद्धा ने उस पत्थर को साक्षात् भगवान बना दिया। उस गिरधर गोपाल ने मीरा को भेजा गया जहर का प्याला पी लिया था और मीरा बचे हुए पानी को पीकर के ज्यों की त्यों बनी रही। साँप का पिटारा आया था तो गिरधर गोपाल साँपों से खेलते रहे।

मीरा ने आखिर में पिटारे को बंद कर दिया। मीरा को किसी ने नहीं काटा और न ही कोई नुकसान हुआ। यह कैसे हो गया ? गिरधर गोपाल के कारण। गिरधर गोपाल कौन ? पत्थर का टुकड़ा। नहीं, मीरा की श्रद्धासिक्त प्रगाढ़ भावना के मिल जाने से ही पत्थर गिरधर गोपाल बन सका। अब वही पत्थर जहाँ का तहाँ पड़ा हुआ है। आप जाकर देख सकते हैं, उसमें कोई चमत्कार नहीं है। पत्थरों में क्या चमत्कार हो सकता था, और क्या होगा ? श्रद्धा ही है जो पत्थर को भी भगवान बना सकती है। एकलव्य की बात सुनी है न आपने। वह भील का एक लड़का था जिसने मिट्टी के द्रोणाचार्य बना दिए थे और मिट्टी के वह द्रोणाचार्य इतने समर्थ हुए कि जो कौरवों और पांडवों को बाणविद्या असली द्रोणाचार्य ने सिखाई थी उससे कहीं ज्यादा उस एकलव्य को आ गई।

रामकृष्ण परमहंस काली के अनन्य उपासक थे। लोगों ने रानी से शिकायत कर दी कि जो भोग है

वह स्वयं खा जाते हैं और जूठन फैला देते हैं। रानी रासमणि एक दिन छत पर गई और वहाँ से छिप करके देखती रहीं सारा नजारा। सही बात यह हुई कि रामकृष्ण काली से कहने लगे, “माँ आप भोजन कीजिए।” वह चुप रहीं क्या कहतीं। रामकृष्ण ने कहा, “अच्छा पहले बेटा खा लेगा तब माँ खाएगी।” उन्होंने ऐसा ही किया। आधा भोजन स्वयं कर लिया और जब काली से कहा, “माता अब आपको करना पड़ेगा।” तभी रानी रासमणि ने देखा कि पत्थर की मूर्ति के हाथ हिलने लगे और उन्होंने थाली में जो भोजन था वह उठाया और निगल लिया। सारा भोजन वे खा गई। खाली थाली धोने के लिए रामकृष्ण परमहंस बाहर निकल रहे थे, तब रानी रासमणि आई और उनके चरणों पर गिर पड़ीं। उन्होंने कहा, “देव आप साक्षात् काली हैं।” यह बात सही है कि रामकृष्ण परमहंस साक्षात् काली थे, क्योंकि अपनी श्रद्धा से उन्होंने पत्थर की मूर्ति को साक्षात् काली बना दिया था। रामकृष्ण ने जब विवेकानंद से कहा कि

काली माँ के पास जा और नौकरी माँग ले तो विवेकानंद ने वहाँ जाकर देखा कि विशालकाय काली जमीन से लेकर आकाश तक को छू रही थीं। वह कहाँ से पैदा हुई थीं ? उसी पत्थर में से पैदा कर दी थीं रामकृष्ण परमहंस ने। वह उनकी श्रद्धा से बनी थीं। अब भी वह मूर्ति है वहाँ, पर अब उसमें कोई दम नहीं है। चोर एक बार उस मूर्ति की सोने की जीभ चुरा ले गए थे। तब वह पत्थर ही रह गई थीं। पत्थर को साक्षात् काली बना देने का श्रेय रामकृष्ण परमहंस को है।

कबीर को दीक्षा देने के लिए स्वामी रामानंद तैयार नहीं थे। कबीर सीढ़ी पर जाकर सो गए। रामानंद उधर से निकले तो उनका पैर अँधेरे में कबीर के ऊपर पड़ गया। राम-राम कहकर वे पीछे हट गए। कबीर ने कहना शुरू कर दिया कि मेरे गुरु स्वामी रामानंद हैं। उन्होंने मुझे मंत्र दे दिया है, दीक्षा दे दी है। स्वामी जी ने पूछा—“तू गलत-सलत बात क्यों कहता है ?” कबीर ने कहा, “नहीं आपने मेरे सीने पर पैर रख दिया था और आपने सीढ़ियों पर

राम-राम कह दिया था। बस मेरे लिए तो आप ही गुरु हो गए।" आप लोग भी इस श्रद्धा के महत्व को समझें। अगर श्रद्धा का अभाव रह गया तो आप बिलकुल खाली हाथ चले जाएँगे और हमारा परिश्रम बेकार चला जाएगा और आपका सौहार्द्र भी बेकार चला जाएगा। आप कृपा करके अपनी श्रद्धा जगाइए। आपको अंधश्रद्धा के लिए यहाँ कुछ नहीं कहा जा रहा है। यहाँ का परिपूर्ण वातावरण है। आप चाहें तो सचाई के साथ इनको परख भी सकते हैं। परखने लायक स्थान यदि न हो तो भी इसको श्रद्धा से अपने लायक बना सकते हैं। श्रद्धा उत्पन्न कीजिए, अभी आपके हिस्से का काम बाकी पड़ा है। हमने अपने हिस्से का काम पूरा कर दिया। आप और हम दोनों अपने-अपने हिस्से का काम पूरा कर लें तो हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि यह कल्प साधना आपके लिए सौभाग्य से भरा-पूरा होगा और हमारे लिए संतोष का। आज की बात समाप्त।

ॐ शान्ति:

साधना की सफलता में वातावरण और श्रद्धा का महत्त्व

आध्यात्मिक प्रगति के लिए भी अनुकूल-अनुरूप वातावरण होना चाहिए अन्यथा संव्याप्त चिंतन की भ्रष्टता, चरित्र की दुष्टता प्रभावित किए बिना नहीं रहती। ढलान की ओर पानी अनायास ही बहता है। ऊपर से नीचे गिरने का उपक्रम पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति ही बनाती रहती है। ऊपर उठाने के लिए विशेष प्रयत्न करने की, विशेष साधन जुटाने और शक्ति लगाने की आवश्यकता पड़ती है। आत्मिक प्रगति के लिए भी लक्ष्य के प्रति उत्साह बढ़ाने वाला, मार्ग दिखाने वाला माहौल चाहिए।

इसके दो उपाय हैं। एक यह कि जहाँ इस प्रकार का वातावरण हो वहाँ जाकर रहा जाए। दूसरा यह कि जहाँ अपना निवास है, वहीं प्रयत्नपूर्वक वैसी स्थिति उत्पन्न की जाए। कम से कम इतना तो हो ही सकता है कि अपने निज के लिए कुछ समय के लिए वैसी स्थिति उत्पन्न कर ली जाए।

एकांत, स्वाध्याय, मनन, चिंतन ऐसे ही आधार हैं। किसी एकांत कोठरी या निर्जन क्षेत्र में बैठकर यह अनुभव किया जा सकता है कि संसार में संव्याप्त अवांछनीयता से अपना संबंध टूट गया।

साधना की सफलता में स्थान, क्षेत्र व वातावरण का असाधारण महत्त्व है। विशिष्ट साधनाओं के लिए घर छोड़कर अन्यत्र उपयुक्त स्थान में जाने की आवश्यकता इसलिए पड़ती है कि पुराने निवास स्थान का ढर्रा अभ्यस्त रहने से वैसी मनःस्थिति बन नहीं पाती जैसी महत्त्वपूर्ण साधनाओं के लिए विशेष रूप से आवश्यक है। कुटुंबियों एवं परिचित लोगों के साथ जुड़े हुए भले-बुरे संबंधों की पकड़ बनी रहती है। कामों का दबाव बना रहता है। राग-द्वेष उभरते रहते हैं। दिनचर्या बदलने पर कुटुंबी तथा साथी विचित्रता अनुभव करते और उसमें विरोध खड़ा करते हैं। आहार और दिनचर्या बदलने में विग्रह उत्पन्न होता है। घरों के निवासी, साथी जिस प्रकृति के होते हैं वैसा ही वातावरण वहाँ छाया रहता है। यह सभी

अड़चनें हैं जो महत्त्वपूर्ण साधनाओं की न तो व्यवस्था बनने देती हैं और न मनःस्थिति ही वैसी रह पाती है। दैनिक नित्यकर्म के रूप में सामान्य उपासना तो घर पर भी चलती रह सकती है, पर यदि कुछ विशेष करना हो तो उसके लिए विशेष स्थान, वातावरण, सान्निध्य एवं मार्गदर्शन भी चाहिए। यह सब प्राप्त करने के लिए उपयुक्त स्थान का प्रबंध करना वह आधार है जिस पर सफलता बहुत कुछ निर्भर रहती है।

साधना के उच्चस्तरीय आध्यात्मिक प्रयोगों के लिए भारत के हिमालय क्षेत्र को अद्वितीय गौरव प्राप्त है। यह क्षेत्र ऋषि, योगियों की तपोभूमि मानी जाती रही है। उच्च आध्यात्मिक प्रयोग इसी क्षेत्र में अनादिकाल से होते चले आ रहे हैं। ऋषि भूमि, देव भूमि के रूप में यह वंदनीय रहा है। दिव्यदर्शियों का कथन है—ब्रह्मांड की सघन अध्यात्म चेतना का धरती पर विशिष्ट अवतरण इसी क्षेत्र में होता रहा है। यह क्षेत्र ब्रह्मांडव्यापी दिव्य चेतना का अवतरण केंद्र है, जहाँ शोध करते हुए, तप करते हुए, मनीषी

साधक गण अपने को देवशक्तियों से सुसंपन्न करते थे। अभी भी इस क्षेत्र में सारी सूक्ष्म विशेषताएँ प्रचुर परिमाण में विद्यमान हैं जो आत्मिक प्रगति के सहयोग के लिए आवश्यक हैं। आत्मसाधना के लिए यह शीत प्रदेश उपयुक्त है, साथ ही जलवायु की दृष्टि से आरोग्यवर्द्धक भी। गंगाजल को वैज्ञानिकों ने दिव्य औषधियों का सम्मिश्रण माना है। ऐसी मान्यता है कि मात्र गंगाजल के सेवन से ही कितनी ही बीमारियों का उपचार अपने आप हो जाता है।

आत्मिक स्वास्थ्य-संवर्द्धन के लिए उपयोगी वातावरण मिल सके तो उसका विशेष लाभ होता है। तपस्वी पर्वतों की गुफाओं में निवास करने, कंदमूल जुटाने, बल्कल वस्त्र पहनने जैसे निर्वाह के साधन ढूँढ़ लेते हैं। धूनी जलाकर शीत निवारण की—लौकी, नारियल आदि के बरतनों की—घास की चटाई बनाने की जैसी सुविधाएँ वहाँ भी मिल जाती हैं। तप साधना के इतिहास में हिमालय की ऊँचाई और गंगातट की पवित्रता का लाभ उठाने वाले

साधकों की संख्या अत्यधिक है। ऐतिहासिक तीर्थ तो अन्यत्र भी हैं, पर आत्मसाधना के तीर्थों की संख्या जितनी इस क्षेत्र में है उतनी अन्यत्र कहीं नहीं।

जहाँ जिस स्तर के व्यक्ति रहते हैं जहाँ जिस प्रकार की हलचलें होती रहती हैं, वहाँ के सूक्ष्म संस्कार भी वैसे ही बन जाते हैं और वे बहुत समय तक अपना प्रभाव बनाए रहते हैं। तपस्वियों का प्राण उनके निवास स्थान के इर्द-गिर्द छाया रहता है। सिंह और गाय एक साथ ऋषि आश्रमों में प्रेमपूर्वक रहते थे। हिरन तथा दूसरे पशु-पक्षी वहाँ निर्भयतापूर्वक पालतू बन जाते थे। ऐसे वातावरण में सहज ही मानसिक विक्षोभ शांत होते हैं और साधना के उपयुक्त मनःस्थिति स्वतः बन जाती है। इस दृष्टि से हिमालय की महत्ता असंदिग्ध है।

एक ही मंत्र, एक ही साधना पद्धति और एक ही गुरु के मार्गदर्शन का अवलंबन लेने पर भी विभिन्न साधकों की आत्मिक प्रगति अलग-अलग गति से होती है। कोई तेजी से आत्मिक विकास की सीढ़ियाँ

चढ़ने लगता है तो कोई मंथरगति से आगे बढ़ता है। इसका क्या कारण है ? मनीषियों ने इसका उत्तर एक ही वाक्य में देते हुए कहा है कि अध्यात्म-क्षेत्र में श्रद्धा की शक्ति ही सर्वोपरि है। जिस प्रकार शक्ति के आधार पर भौतिक हलचलें और गतिविधियाँ संपन्न होतीं तथा अभीष्ट उपलब्धियाँ हस्तगत होती हैं, उसी प्रकार आत्मिक क्षेत्र में श्रद्धा ही अपनी सघनता या विरलता के आधार पर चमत्कार प्रस्तुत करती है। श्रद्धा-विहीन उपचार सर्वथा निष्प्राण रहते हैं और उनमें किया गया श्रम भी प्रायः निरर्थक चला जाता है। श्रद्धा का महत्त्व बताते हुए गीताकार ने कहा है—

श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ।

—गीता १७/३

यह पुरुष श्रद्धामय है। जो जिस श्रद्धा वाला है अर्थात् जिसकी जैसी श्रद्धा है वह स्वयं भी वही अर्थात् उस श्रद्धा के अनुरूप ही है।

यह श्रद्धा ही है जो निर्जीव पाषाण प्रतिमाओं में भी प्राण भर देती है और उन्हें अलौकिक चमत्कारी

क्षमता से संपन्न बना देती है। मीरा ने कृष्ण प्रतिमा को अपनी श्रद्धा के बल पर ही इतना सजीव बना लिया था कि वह प्रत्यक्ष कृष्ण से भी अधिक प्राणवान प्रतीत होने लगी थी। श्रद्धा विश्वास के संबंध में रामायण में एक सुंदर प्रसंग आता है। सेतुबंध के अवसर पर रीछ-वानरों ने राम के प्रति अपने विश्वास का आधार लेकर समुद्र में पत्थर तैरा दिए थे, किंतु स्वयं राम ने अपने हाथों से जो पत्थर फेंके वे नहीं तैर सके। इसी प्रसंग को लेकर शास्त्रकारों ने कहा है, 'राम से बड़ा राम का नाम' पर नाम में कोई शक्ति नहीं है। शक्ति है उस श्रद्धा में जो अलौकिक सामर्थ्य उत्पन्न करती है।

अध्यात्म क्षेत्र में श्रद्धा की शक्ति ही सर्वोपरि है। जिस प्रकार शक्ति के आधार पर भौतिक हलचलें गतिशील होती हैं और उनके सहारे अभीष्ट उपलब्धियाँ हस्तगत होती हैं। उसी प्रकार आत्मिक क्षेत्र में 'श्रद्धा' ही मूल है। उसी की सघनता चमत्कार दिखाती है।

श्रद्धा और विश्वास के बिना भौतिक जीवन में भी गति नहीं, फिर अध्यात्म क्षेत्र का तो उसे प्राण ही

कहा गया है। आदर्शवादिता में प्रत्यक्षतः हानि ही रहती है, पर उच्चस्तरीय मान्यताओं में श्रद्धा रखने के कारण ही मनुष्य त्याग-बलिदान का कष्ट सहन करने के लिए खुशी-खुशी तैयार होता है। ईश्वर और आत्मा का अस्तित्व तक प्रयोगशालाओं की कसौटी पर खरा सिद्ध नहीं होता। वह निश्चित रूप से श्रद्धा पर ही अवलंबित है।

श्रद्धा को महानता का बीज कह सकते हैं। वही उगता, बढ़ता और परिपुष्ट होता है जो जीवन वृक्ष को स्वर्गस्थ कल्पवृक्ष के समतुल्य बना देता है। चेतना का वर्चस्व उसी से निखरता है। नर-वानर का मानव, महामानव, अतिमानव की दिशा में बढ़ चलने का साहस एवं बल श्रद्धा के सहारे ही संभव होता है। श्रद्धा और आस्तिकता का एकदूसरे के साथ अन्योन्याश्रय संबंध है। ईश्वर का प्रत्यक्ष अनुग्रह श्रद्धा के रूप में ही मिलता है और जैसे इस तत्त्व की जितनी उपलब्धि हो जाती है उसके जीवन का वंदनीय बनने की संभावना उसी अनुपात से परिपुष्ट होती चली

जाती है। इस स्थिति को ऋद्धियों और सिद्धियों की जननी कहा जा सकता है। आस्तिकता का यह परोक्ष प्रतिफल है जिसमें संदेह की कोई गुंजाइश नहीं है।

सत्य के सद्गुण, ऐश्वर्यस्वरूप एवं ज्ञान की थाह अपनी बुद्धि से नहीं मिलती, उसके प्रति सविनय प्रेमभावना विकसित होती है, उसी को श्रद्धा कहते हैं। श्रद्धा सत्य की सीमा तक साधक को साधे रहती है, सँभाले रहती है। श्रद्धा के बल पर ही मलिन चित्त अशुद्ध चिंतन का परित्याग करके बार-बार परमात्मा के चिंतन में लगा रहता है।

परमात्मा के प्रति अत्यंत उदारतापूर्वक आत्मभावना पैदा होती है, वही श्रद्धा है। सात्त्विक श्रद्धा की पूर्णता में अंतःकरण स्वतः पवित्र हो उठता है। श्रद्धायुक्त जीवन की विशेषता से ही मनुष्य स्वभाव में ऐसी सुंदरता बढ़ती जाती है जिसको देखकर श्रद्धावान् स्वयं संतुष्ट बना रहता है। श्रद्धा सरल हृदय की ऐसी प्रीतियुक्त भावना है जो श्रेयपथ की सिद्धि कराती है।

भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वास रूपिणौ ।
याभ्यां बिना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम् ॥

— रामायण, बालकांड

हम सर्वप्रथम भवानी और भगवान, प्रकृति और परमात्मा को श्रद्धा और विश्वास के रूप में वंदन करते हैं जिसके बिना सिद्धि और ईश्वरदर्शन की आकांक्षा पूर्ण नहीं होती ।

श्रद्धा का आविर्भाव सरलता और पवित्रता के संयोग से होता है । पार्थिव वस्तुओं से ऊपर उठने के लिए सरलता और पवित्रता इन्हीं दो गुणों की अत्यंत आवश्यकता होती है । इच्छा में सरलता और प्रेम में पवित्रता का विकास जितना अधिक होगा उतनी ही अधिक श्रद्धा बलवान होगी । सरलता के द्वारा परमात्मा की भावानुभूति होती है और पवित्र प्रेम के माध्यम से उसकी रसानुभूति । श्रद्धा दोनों का सम्मिलित स्वरूप है । उसमें भावना भी है, रस भी । जहाँ उसका उदय हो, वहाँ लक्ष्यप्राप्ति की कठिनाई का अधिकांश समाधान तुरंत हो जाता है ।

